दीन के अस्ल मुतालबात

और

हमारा तर्ज़े अमल

लेखक– अबुल आला मौदूदी रह0

अनुवादक– डॉ0 रफ़ीक़ अहमद

एक मरीज़ अपने इलाज के लिए एक माहिर हकीम से रुजू करता है। हकीम या डाक्टर मर्ज को समझ लेने के बाद दवाओं के सही ज्ञान के आधार पर नुस्खा लिख देता है। मरीज़ को उस हकीम की महारत और कुशलता और नुस्खा के सही होने पर पूरा यक़ीन है, वह इस नुस्खे को सोने के एक साफ-सुथरे पतरे में लपेट कर गले में लटका लेता है। और उसकी एक-एक दवा का नाम रोजाना दस-दस हज़ार मर्तबे पूरी आस्था और अक़ीदत के साथ रट लिया करता है। क्या आप ख्याल करेंगे कि उसका यह कार्य उसकी बीमारी को दूर करने में लाभकारी साबित होगा? शायद इसके जवाब में 'नहीं' कहने के लिये मामूली ग़ौर व फ़िक्र की भी ज़रूरत न पड़े। क्यों ? इसलिए कि इस काम की मूर्खता स्पष्ट है। हकीम की महारत दवाओं की सेहत, मरीज़ की आस्था और सब्र अपनी जगह इलाज के लिये फ़ायदेमन्द सही मगर उन सबकी कामयाबी इस बात पर निर्भर है कि हकीम की बताई हुई दवाओं को शरीर तक पहुँचने और तबियत और बदन को उनकी तासीर से फ़ायदा उठाने का मौका दिया जाये। इलाज की यह लाज़मी और ज़रूरी शर्त पूरी न होगी, तो हकीम की महारत और मरीज़ की अक़ीदत और आस्था अपने मक़सद को पूरा करने में कामयाब न हो सकेगी। बनफ़्शा, गाव ज़बां (दवाओं का नाम) की ख़ासीयत उनके इस्तेमाल में है न कि उनके नाम में। अगर मर्ज़ की सही पहचान के बाद उन दवाओं को सही तरीक़े से इस्तेमाल किया जाये

तो जिस बीमारी के लिये वह लाभकारी है उनको कुछ ही रोज़ में ख़त्म कर सकती हैं। लेकिन यदि कोई व्यक्ति सारी उम्र बनफ़्शा-बनफ़्शा और गाव ज़बां-गाव ज़बां के अल्फाज़ ज़बान से रटता रहे और इस वज़ीफ़े से यह उम्मीद रखे कि उसका मर्ज़ ख़त्म हो जायेगा तो मात्र यह ख्याल, और जुनून है''

एक ऊँचे दर्जे का क़ानून दां अपने इल्म और अपनी अक्ल की सारी कूव्वतें सर्फ़ करके, इन्सानी फ़ितरत, ज़माने की ज़रूरतें और मुल्क के हालात का ढीक-ढीक अंदाज़ा करके, एक ऐसा क़ानून बनाता है जिससे बेहतर क़ानून बनना मुम्किन नहीं है। क़ानून बेहतर से बेहतर तरीक़े पर प्रकाशित कर लिया जाता है। सुनहरी जिल्दें बंधवाई जाती हैं। रेशमी गिलाफ़ चढ़वाये जाते हैं। हर अदालत के कमरे में उसकी एक-एक जिल्द सबसे ऊँचे मुक़ाम पर रख दी जाती है। हर वकील उसको लेकर आंखों से लगाता है और अपने आफ़िस में पूरे सम्मान के साथ जगह देता है। जज और वकील सभी प्रतिदिन निहायत अक़ीदत व आस्था के साथ मधुर स्वर में उसको पढ़ते हैं और पूरा यक़ीन रखते हैं कि यह बेहतरीन क़ानून है। मगर न वह उसको समझते हैं, न समझने की कोशिश करते हैं, न समझना ज़रूरी समझते हैं और न मुकदमों की पैरवी करने और मुक़दमों का फ़ैसला करने में उसको इस्तेमाल करते हैं, अदालत की कार्रवाई के लिये उन्होंने कुछ और क़ानून बना रखे हैं, और उनका यक़ीन यह है कि इस क़ानून का तो हाकिमे अदालत के सर

पर लटकना और वकीलों का उस .क़ानून से गहरा रिश्ता रखना, और उसके अल्फ़ाज़ का पढ़ना और मात्र सुन लेना ही अदालत और इन्साफ़ की ज़रूरतों को पूरा कर देता है, और उसकी बर्कत से सारे मामले और मसले अपने आप हल हो जाते हैं। फिर जो अधिकारी उनसे भी ज़्यादा पक्के अक़ीदा वाले हैं उनका अमल तो यह है कि जहां कोई मुक़दमा पेश हुआ और उन्होंने बहुत ही अदब के साथ उस क़ानून की एक धारा पढ़ कर दोनों वादियों पर फूंक दी। अब उन्हें यक़ीन है कि मुक़दमा का फैसला ख़ुद हो जायेगा। जहां कोई मुजरिम पेश हुआ और उन्होंने क़ानून की एक धारा लिखकर मेज़ के खाने में बन्द कर दी। अब वह समझते हैं कि अपराधी जेल की कोठरी में पहुंच गया, जहां किसी मज़लूम ने आकर फ़र्याद की, और उन्होंने उस क़ानून में से एक और धारा निकाल कर उसके गले में बांध दी, अब उनको पूरा यक़ीन है कि उसको इन्साफ मिल गया। अगर मुल्क में बहुत अशान्ति और बदअमनी फैलती है और लोगों के मामलात आपस में खराब होने लगते हैं तो उस क़ौम के लोग जगह-जगह जलसे आयोजित करते हैं, और हर जलसे में शहर का एक सबसे ज़्यादा अच्छी आवाज़ वाला व्यक्ति खड़ा होकर उस क़ानून की चन्द धारायें अत्यन्त सुरीली आवाज़ के साथ पढ़ता है, सब लोग ससम्मान अक़ीदत के कानों से उसको सुनते हैं मगर न पढ़ने वाला यह जानता है कि क्या पढ़ रहा है, न सुनने वाले यह समझते हैं कि जो कुछ सुन

रहे हैं उसका मतलब क्या है, न किसी की यह नियत होती है कि उसको समझेंगे और उस पर अमल करेंगे और न किसी का यह ख्याल है कि यह क़ानून समझने और अमल करने के लिये भी बनाया गया है। उस क़ौम के लोग तो यह विश्वास रखते हैं कि मात्र उस क़ानून के अल्फाज़ पढ़ने और सुनने से अमन क़ायम हो जाता है। मामले ठीक हो जाते है और खराबियां दूर हो जाती हैं। अगर आपसे कहा जाये कि वास्तव में एक क़ौम ऐसी मौजूद है जिसकी कार्यशैली यही है तो आप बेइख्तियार उसकी हंसी उड़ायेंगे और कुछ अजब नहीं कि उसको पागल और दीवाना करार दें। क्योंकि इस बात को समझने के लिये कुछ ज़्यादा ग़ौर व फिक्र की ज़रूरत नहीं है कि क़ानून जादू या मन्तर नहीं है जिसके अल्फाज़ मात्र ज़बान से दुहराने या काग़ज पर लिख देने से अपना असर दिखाते हों, बल्कि उसकी बर्कत और उसके फ़ायदे और मुनाफ़े का हासिल होना इस पर निर्भर है उसमें मर्ज़ी और मक़सद को समझा जाये और ज़िन्दगी के मामलात में उसे लागू किया जाये। स्पष्ट क़ानून की परिपूर्णता का ज्ञान और उसके बनाये हुये क़ानून के सही होने पर यक़ीन और क़ानून के अल्फाज़ का सम्मान, यह सब कुछ बेकार है और उसका इज़हार ऐसे लोगों की तरफ से हो जो उस क़ानून को समझते ही नहीं। और उसको अमल के क़ाबिल ही ख्याल नहीं करते ।

वैद्य या हकीम के नुस्खों को तावीज़ बनाने वालों और माहिरे क़ानून की किताबों को जादू-मन्तर की जगह

देने वालों के बारे में आपने बड़ी आसानी से पागल होने का फ़तवा जारी कर दिया। मगर तनिक ग़ौर कीजिये कि कहीं इस फ़तवे का निशाना खुद हम और आप तो नहीं हैं। एक बहुत बड़े, सबसे बड़े हकीम ने हमारे लिये एक नुस्खा प्रस्तावित किया था जो सारे नुस्खों से ज़्यादा मुकम्मल और सही और आज़माया हुआ था। हमारी सारी आत्मिक व नैतिक, व्यक्तिगत और सामाजिक बीमारियों के लिये जो दवायें इसमें प्रस्तावित की गयीं थी उनसे बेहतर दवायें और मुम्किन न थीं। मगर यह नुस्खा लिखा तो इसलिए गया था कि हम उसकी दवाओं को इस्तेमाल करें, लेकिन हमने उसको गलों का तावीज़ बनाया, उसे घोल-घोल कर पिया, उसके अल्फाज़ बेसमझे-बूझे अपनी ज़बानों पर जारी किये, और वह सब मामले उसके साथ किये जिनके लिये वह दरअस्ल लिखा ही न गया था, और न किया तो वह मामला जिसके लिये दरअस्ल वह लिखा गया था। यह नुस्खा अब भी हमारे और आपके घरों में रखा हुआ है। ज़्यादा सम्मानजनक जगहों पर, बेहतर से बेहतर गिलाफ़ों में लपेटा हुआ रखा है। हम और आप सारी बदतरीन आत्मिक, नैतिक, व्यक्तिगत और सामाजिक बीमारियों में ग्रस्त हैं, तड़प रहे हैं, दर्द से बेचैन हैं, अनाड़ी डाक्टर हर बनावटी वैद्य, हर नीम हकीम, हर झोलाझाप डाक्टर के नुस्खे इस्तेमाल कर रहे हैं और यह हाल है कि ''मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की''

मगर इसके बावजूद अस्ल डाक्टर की ओर नहीं

पलटते जिसकी महारत और कुशलता पर ईमान और यक़ीन रखते है। उस नुस्खे को इस्तेमाल करने का ख्याल भी नहीं करते जिसकी सेहत पर यक़ीन रखते हैं और जिसके ताल्लुक़ से मालूम है कि जब कभी आज़माया गया अचूक साबित हुआ। अब फ़रमाइये कि इस तरीक़ेकार पर आप क्या हुक्म लगायेंगे ? वही पागलपन का या कुछ और? एक बहुत बड़े बल्कि सबसे बड़े क़ानून दां ने हमारे लिये एक कानून बनाया, इन्सानी फ़ितरत के मुताबिक़ और सही इल्म की बुनियाद पर ऐसा क़ानून बना दिया जो हर ज़माने, हर मुल्क और हर स्थित के लिये उपयुक्त और मुनासिब हो सकता था। और इन्सानी ज़िन्दगी के प्रत्येक भाग को एक सही नियम के अन्तर्गत लाने व समूहों और जमाअतों के मामलात को दुरुस्त करने के लिये इससे बेहतर क़ानून न हो सकता था। क़ानून बनाने वाले का मक़सद यह था कि हम उस क़ानून को समझे और उस पर अमल करें। मगर हमने उसको ऊँचे से ऊँचे ताक़ों में जगह दी, उसको सरों पर रखा, उसके मायने और मतलब को नज़रअंदाज करके अल्फाज़ को ज़बान से खूब दुहराया, उसको बुखार, नज़ला, खांसी और दर्दे सर के इलाजों में इस्तेमाल किया, उससे भूत प्रेत और शैतान भगाये, उसको पढ़-पढ़ कर अपने हर जाइज़ व नाजाइज़ मक़सद में कामयाबी की दुआयें कीं। मतलब यह कि इससे हर वह काम लिया जिसके लिये वह बनाया न गया था, और न लिया तो वही काम जिसके लिये दरअस्ल वह बनाया गया था। हमारी व्यक्तिगत और

सामूहिक, घरेलू और बाहरी, नैतिक और भौतिक ज़िन्दगी जिस गिरावट, पतन और बर्बादी में मुब्तेला है इस पर हम रो रहे हैं, चीख़ रहे हैं परेशान हैं, घबराहट के मारे हर तरीक़े, हर विधान, हर क़ानूने जिन्दगी की तरफ लपक रहे हैं, और इस वजेह से और ज़्यादा तबाह व बर्बाद होते जा रहे हैं, मगर तवज्जो नहीं करते तो उस क़ानून की तरफ़ जिसके बनाने वाले का कमाल प्रमाणित एवं सर्वमान्य है जिसकी सेहत व सच्चाई पर हम ईमान रखते हैं और जिसके सम्बंध से मालूम है कि जब उस पर अमल किया गया तो उसने इन्सानी जमाअत को ऐसा संगठित किया कि आसमान ज़मीन पर नाज़ करने लगा। अब फ़रमाइये कि हम पर और आप पर वही बेअक्ल होने, जाहिल, नादान और पागल होने का फ़तवा आयद होता है या नहीं?

यह न समझा जाये कि मैं अल्लाह के कलाम की बर्कत और तासीर का इनकारी हूँ। जब मैं इस पर ईमान रखता हूँ कि क़ुरआन मजीद का हर लफ्ज़ और हर हर्फ़ अल्लाह का कलाम है, तो मैं उसके मुकम्मल खैर व बर्कत होने और उसके बाअसर और कारगर होने से क्यों इन्कार कर सकता हूँ। मगर मेरा अकीदा यह है कि क़ुरआन के अल्फाज़ की बर्कत और तासीर एक दूसरा फ़ायदा है, नाज़िल होने का अस्ल मक़सद नहीं है। नाज़िल होने का अस्ल मक़सद तो हिकमत की तालीम, सीधे और सच्चे रास्ते की हिदायत, अंधेरे को छांट कर नूरे हक़ और रौशन इल्म फैलाना, दिलों को नापाकियों और सारे इंसानों को

ज़िन्दगी गुज़ारने के ऐसे तरीके सिखाता है जिन पर चलकर वह दुनिया और आख़िरत दोनों में भलाई और कामयाबी हासिल कर सकें। जो लोग इस हिक्मत को समझ लें, टेढ़े रास्तों को छोड़कर सीधे रास्ते पर लग जायें, अंधेरे से निकल कर रोशनी में आ जायें, दिलों को बातिल (असत्य) की मुहब्बत और बातिल के खौफ़ से पाक कर लें और इस तरह की ज़िन्दगी गुज़ारें जिसकी शिक्षा क़ुरआन मजीद ने दी है, उनके लिये क़ुरआन का हर शब्द और हर अक्षर अपने अन्दर बर्कत और तासीर रखता है। वह कलामे इलाही के सारे फ़ायदों व मुनाफ़ों से फ़ायदा उठा सकते हैं, वह जिस चीज़ की तरफ़ बढ़ेंगे कामयाबी उनका स्वागत करेगी, मक़सूद खुद उनकी तरफ़ बढ़ेगा। मतलूब खुद उनका तालिब होगा। वह सर से पांव तक मोहनी बन जायेंगे। उनकी नज़रों में मिट्टी को सोना बना देने वाले गुण पैदा हो जायेंगे। उनकी ज़बान से जो कुछ निकलेगा, तीर निशाने पर ही लगेगा। सारी दुनिया उनके नियंत्रण में आ जायेगी। मगर जो लोग क़ुरआन की तालीम से दूर, उसकी हिदायत और उसकी रोशनी से वंचित, उसके बताये हुये नियमों और तरीकों से भटके हुये हैं उनका मात्र क़ुरआन के अल्फ़ाज़ से फ़ायदा उठाने की कोशिश करना, बिल्कुल ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति बादाम की गिरी अलग करके उसका छिलका ज़मीन में बो दे। ज़ाहिर है कि अगर वह सारी उम्र उसको पानी देता रहेगा उस छिलके से बादाम का पेड़ न निकलेगा।

आज कल लोग क़ुरआनी आयतों को मुख़्तलिफ़ दुनयवी फ़ायदे के लिये पढ़ते हैं, और हज़ारों तसबीहें (मालायें) पढ़ डालते हैं, मगर कामयाब नहीं होते। उसकी वजह यही है कि वह मग्ज़ (गिरी) को छोड़कर छिलके होते हैं और उन्हें पानी देकर उम्मीद रखते हैं कि फल देंगे। आयाते कुरआनी के अल्फाज़ उनकी ज़बान से अदा होते हैं। मगर दिल व दिमाग़ उनके मायने व मतलब से बेखबर होते हैं। दिल में अल्लाह के बजाये गैरूल्लाह बसा होता है। नीयत में निष्ठा और खुलूस के बजाये खोट होता है। इरादों और इच्छाओं में पवित्रता के बजाये गन्दगी होती है। रगों में वह ख़ून दौड़ता है जो नाजाइज़ तरीक़ों से कमाई हुई गिज़ा से बना हुआ है। शरीर का हर अंग .कुरआनी आदेशों की खिलाफ़वर्ज़ी पर गवाह होता है जिनमें इस नाम के आमिल ने उसको इस्तेमाल किया है और खुद वह ज़बान जिस पर क़ुरआनी अल्फाज़ जारी है, रातों-दिन झूठ, ग़ीबत, गाली-गलौज और बेहयाई से लिपटी होती है।

क्या कोई अक्लमंद यह बात मान सकता है कि इस तरीक़े से क़ुरआन की किसी आयत को पढ़कर कोई फ़ायदा हासिल करना मुम्किन है ? अगर कोई शख्स बीमारी में बदपरहेज़ी करे, डॉ० की हिदायतों और निर्देशों पर अमल न करे। जो दवायें डॉ० ने बताई हैं उनको इस्तेमाल भी न करे और सिर्फ नुस्खे को सामने रख कर हर दवा का नाम दो हज़ार मर्तबा पढ़ लिया करे तो तुम बेधड़क हुक्म लगा दोगे कि उसका इस तरीके से सेहतमंद

होना असम्भव है। फिर जब एक व्यक्ति क़ुरआन को न समझता है, न उसके आदेशों पर अमल करता है, बल्कि उसकी हिदायतों की खिलाफ़वर्ज़ी करता है, और सिर्फ उसके अल्फाज़ से बर्कत और तासीर हासिल करना चाहता है तो उस पर नाकामी का हुक्म लगाने में तुम्हें क्यों संकोच है।

दुनिया अमल की जगह है। यहां ख़ुदा का निर्धारित क़ानून यही है कि जैसा करना वैसा भरना। और यह वह क़ानून है, जिसको हम में का हर एक व्यक्ति जानता और अपनी ज़िन्दगी के हर हिस्से में इसी पर अमल पैरा है। एक किसान ने बाप-दादा से खेती-बाड़ी के जो तरीक़े सीखे हैं उनको वह समझता है, उनके अनुसार अमल करके दोपहर की कड़ी धूप में हल चला कर ज़मीन तैयार करता है, बीज बोता है, पानी देता है, रातों को जाग-जाग कर खेती की देखभाल करता है, तब कहीं फ़सल तैयार होती है और वह उसको काट कर, खलिहान करके, अपनी मेहनतों के फल से फ़ायदा उठाता है। एक व्यापारी ने व्यापार की दुनिया में चल फिर कर जो इल्म, अनुभव और सीख हासिल किया है उससे वह काम लेता है, अपने लिये कारोबार के मौक़े तलाश करता है, और अपना रूपया लगाता है, अपने विवेक और अक़्ल को इस्तेमाल करता है, रातो दिन अपने कारोबार को तरक़्क़ी देने की फ़िक्र में लगा रहता है, दिमाग़ से उपाय और तर्कीब सोचता और हाथ-पांव से मेहनत करता है तब कहीं उसे फ़ायदे की सूरत नज़र आती है। एक

कारीगर अपनी कला को सीखने में मशक्कत बर्दाश्त करता है। फिर कच्ची सामग्री एकत्र करके उस पर अपनी अक्ल और मेहनत लगाता है। बेकार चीज़ को कारामद बनाता है और उन लोगों तक उसे पहुँचाता है जिनको उसकी ज़रूरत होती है, तब कहीं उसे अपनी मेहनत का फल मिलता है। मतलब यह कि हर व्यक्ति अपनी अपनी जगह यह समझता है कि जो मक़सद उसके सामने है वह बग़ैर उसके हासिल होना मुम्किन नहीं है कि पहले मक़सद हासिल करने के तरीक़े मालूम किये जायें उसके बाद उन तरीक़ों पर, मेहनत, तवज्जो और एकाग्रता के साथ अमल किया जाये। फिर अगर किसी कला और किसी व्यापार के उसूल और तरीक़े किसी किताब में लिखे हों तो कोई भी उसके मायने यह नहीं समझता कि इस किताब का मात्र वजूद ही उस काम को पूरा कर देगा जिसके लिये वह लिखी गयी है। और उसके सिर्फ अल्फाज़, इन्सान की समझ–बूझ और मेहनत और मशक्कत की जगह लेकर खुद बखुद नतीजे और फ़ायदा देते चले जायेंगे। मिसाल के तौर पर खेती–बाड़ी पर जो किताब लिखी गयी हो उसके सम्बंध से हर व्यक्ति यही समझेगा कि इसमें खेती–बाड़ी के उसूल और तरीक़े लिखे गये हैं कि जो लोग खेती बाड़ी करने वाले हैं वह उन्हें समझें और उनके अनुसार फ़सल उगायें। लेकिन किसी मूर्ख और बदअक्ल किसान के ज़ेहन में भी यह ख्याल नहीं आ सकता कि अगर खेत–बाड़ी के तरीके बताने वाली विश्वसनीय और प्रमाणित किताब को

खरीद कर उसे रोज़ाना पढ़ लिया करेगा तो हल चलाना, ज़मीन जोतना, बीज बोना, पानी देना, और दूसरी सारी मेहनतों से बच जायेगा, खेती आपसे आप तैयार हो जाया करेगी, और वह मज़े से बैठा गल्ला खाया करेगा। इसी तरह जो किताब व्यापार के गुर और कामयाबी हासिल करने के तरीक़े सिखाने के लिये है, और उस व्यक्ति के लिये फ़ायदेमंद हो सकती है जो व्यापार करे और उसमें उन उसूलों और तरीकों को अपनाये, मगर कोई बेवकूफ से बेवकूफ व्यापारी भी इतना बड़ा धूर्त न होगा कि इस किताब को खरीद कर दुकान बन्द कर दे, लेन-देन छोड़ दे और बैठकर सिर्फ उस किताब को पढ़ लिया करे और यह समझ ले कि कारोबार खुद बखुद चलेगा और लक्ष्मी उसके घर दौड़ी चली आयेगी।

जब ज़िन्दगी के सारे मामलों में हम उस क़ानून को जारी देखते हैं, जब हमारा अनुभव यह है कि मक़सद को हासिल करने की शर्तो में से एक शर्त भी अगर पूरी नहीं होती तो मक़सद हासिल नहीं होता। जब हम जानते हैं कि नतीजों के रिश्ते अस्बाब (संसाधन) के साथ वाबस्ता हैं, और इस अस्बाब की दुनिया में कभी ऐसा नहीं होता कि अल्फाज़ सामान और तत्वों की जगह ले लें। विचार व ख्याल, क़ूव्वत और ताक़त का विकल्प मुहइया कर दे, अन्धा यक़ीन, अक्ल और समझ और इल्म और बसीरत की कमी पूरी कर दे, और ठहराव और निष्क्रियता से वह नतीजे जाहिर हों जो मेहनत व मशक्कत पर निर्भर हैं। तो क्या

वजह है कि हम मज़हब के मामले में ख़ुदा के इस अटल क़ानून को जारी नहीं समझते ? और यहां आकर यह समझ लेते हैं कि ख़ुदा ने क़ुरआन मजीद को नाज़िल फ़रमा कर हमें अक्ल व फ़िक्र से मुक्त और मेहनत व मशक्कत से आज़ाद कर दिया है। यक़ीनन यह किताब मुकम्मल रहमत व बर्कत है मगर उनके लिये नहीं जो सिरे से उसकी पैरवी ही न करें। यक़ीनन यह नूर और रोशनी है मगर उनके लिये नहीं जो उसकी तरफ से आंखे बन्द कर लें। यक़ीनन यह मार्गदर्शक और रहनुमा है मगर उनके लिये नहीं जो न उससे रास्ता पूछे और न उसके बताये हुये रास्ते पर चले। यक़ीनन यह दुनिया और दीन की कामयाबी हासिल करने के लिये ज़मीन व आसमान के सृष्टा का बनाया हुआ क़ानून है। मगर जो उस क़ानून पर अमल ही न करे उसे कामयाबी की उम्मीद करने का क्या हक़ है ? यक़ीनन यह सबसे बड़े हकीम का बनाया हुआ कानूने अमल है, जिससे इंसान को अनगिनत फ़ायदे हासिल हो सकते हैं, मगर उन फ़ायदों और मुनाफ़ों में से वह शख्स क्या हिस्सा पाने की उम्मीद कर सकता है जो न यह जानता है कि इस दस्तूरे अमल (कर्म विधान) में क्या हिदायतें दी गयी हैं और न उसको अपनी ज़िन्दगी का दस्तूर बनाना चाहता है।

मैं समझता हूँ कि ये बातें मेरे मक़सद और आशय को स्पष्ट करने के लिय बिल्कुल काफी हैं। मैं दरअस्ल यह बात ज़ेहन में बिठाना चाहता हूँ कि क़ुरआन मजीद की

सच्चाई पर ईमान लाना, तौहीद, रिसालत, आख़िरत, आस्मानी किताबें, फ़रिश्तों पर यक़ीन रखना, क़ुरआन की तिलावत करना और फरायज़ जिस तरह भी भले-बुरे तौर से अदा हो सकें अदा कर लेना, मुसलमान होने के लिए काफी हैं, लेकिन यह इस्लाम का कम से कम दर्जा है और उस दीन और दुनिया की भलाई और कामयाबी को पहुँचने और दुनिया और आख़िरत में उस बड़ाई, बलन्दी और उच्च स्थान पर आसीन होने के लिये हरगिज़ काफी नहीं है जिसका वादा अल्लाह ने मुसलमानों से किया है। अगर मुसलमान उसको हासिल करना चाहते है तो उन्हें सबसे पहले कुरआन की तरफ़ पलटना चाहिए। उसकी शिक्षाओं को समझना चाहिये और मालूम करना चाहिए कि वह दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने के लिये कौन सा तरीका-ए-अमल प्रस्तुत करता है। फिर रसूले अमल सल्ल० और आप के सहाबा-ए-कराम रज़ि० की ज़िन्दगी पर नज़र डालनी चाहिए कि उन्होंने उस तालीम और तरीकेकार को किस तरह समझा और किस तरह अपने आपको उसका अमली नमूना बनाया। हर व्यक्ति अपनी हैसीयत और सामर्थ्य अपनी योग्यता, अपनी ज्ञान परिधि के अनुसार जहां तक उसका अध्ययन कर सकता और उसको समझ सकता है, उसको अध्ययन करना और समझना चाहिये। और फिर कोशिश करनी चाहिए कि जिस हद तक मुम्किन हो वह उस हिदायत पर चले जो क़ुरआन और सुन्नते रसूल व असहाबे रसूल से उसको हासिल हो। इस इल्म और अमल में एक

व्यक्ति जितनी कोशिश करेगा उतनी ही भलाई और कामयाबी उसे हासिल होगी, और जो कोशिश न करेगा उसको कामयाबी भी हासिल न होगी और उस नाकामी और असफलता की ज़िम्मेदारी क़ुरआन और इस्लाम पर नहीं बल्कि खुद उसकी बेअमली और बेइल्मी पर होगी।

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि एक मुसलमान की हैसीयत से दुनिया और आख़िरत में कामयाबी हासिल करने के लिये दो चीज़ों की ज़रूरत है। एक इल्म दूसरे अमल। इल्म से तात्पर्य यह है कि इंसान उससे वाकिफ़ और बाखबर हो कि इस्लाम क्या है ? उसकी शिक्षायें क्या है ? वह किस चीज़ की तरफ दावत देता है? और दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने के लिये वह क्या कार्य प्रणाली प्रस्तुत करता है? अमल से तात्पर्य यह है कि इस्लाम ने इबादत, नैतिकता, सामाजिकता और सियासत के सम्बंध से जो उसूल और क़ानून निर्धारित किये हैं उन पर अमल किया जाये।

फ़ायदेमंद नतीजा हासिल करने के लिये इन दोनों चीज़ों का साथ-साथ होना ज़रूरी है। लेकिन इन दोनों में इल्म पहले है क्योंकि अमल बग़ैर इल्म के नहीं हो सकता। अगर हो भी तो ठीक-ठीक जैसा होना चाहिये वैसा नहीं हो सकता। इसमें संदेह नहीं कि इल्म बगैर अमल भी फ़ायदेमंद नहीं है, मगर जो शख्स इल्म रखता है उससे यह उम्मीद की जा सकती है कि उसके अमल में किसी न किसी हद तक उसके इल्म का असर भी ज़रूर आयेगा।

इल्म की बुनियाद क़ुरआन है। इस किताब पाक में

वह सारे उसूल और क़ानून बयान कर दिये गये हैं जिन पर इस्लाम की बुनियाद है। लिहाज़ा एक मुसलमान को सबसे पहले क़ुरआन को समझना और उसकी शिक्षाओं से बाखबर होना चाहिये। फिर इल्म का दूसरा स्रोत रसूलुल्लाह सल्ल० की ज़िन्दगी है। आपने एक नबी की हैसीयत से तेइस वर्षों तक जो कुछ किया और जो कुछ कहा है वह कुरआन की व्याख्या है, और दरअस्ल कुरआन की वास्तविक और प्रमाणित तफ़सीर वही है। इल्म का तीसरा स्रोत सहाबा-ए-कराम की ज़िन्दगी है। उन्होंने क़ुरआन को खुद कुरआन वाले से समझा है। और क़ुरआन की इल्मी और अमली तफसीर (शैक्षिक एवं व्यवहारिक व्याख्या) खुद अपनी आंखों से देखी और अपने कानों से सुनी है, इसलिये उनका समझना दूसरों के समझने से ज़्यादा सही और विश्वसनीय है, फिर जो लोग इन्ही तीनों स्रोतों से फ़ायदा उठा कर इस्लाम के उसूल और ज़िन्दगी के आन्तरिक मामलों पर उनको चश्पा करने के तरीक़ों को अच्छी तरह समझ लें, उनमें यह योग्यता पैदा हो जाती है कि ज़िन्दगी के आम मामलों में जो हर मुल्क और हर ज़माने में नये ढंग और नये तौर से पेश आते हैं, उसूले इस्लाम के अनुसार आदेश और क़ानून बना सकें, क्यों कि जो इल्म उन्होंने क़ुरआन और सुन्नते रसूल और सहाबा रज़ि० की ज़िन्दगी से हासिल किया है, उससे वह इस्लाम की रूह तक पहुँच गये हैं और उनमें ये सलाहियत पैदा हो गयी है कि जब कभी कोई ऐसा मामला उनके सामने आये जो रसूलुल्लाह सल्ल०

और सहाबा-ए-कराम के ज़माने में पेश नहीं आया तो वह यह फ़ैसला कर सकते हैं कि इस मामले में रसूलुल्लाह सल्ल० का फ़तवा क्या होता या अगर सहाबा रज़ि० के सामने यही मामला आता हो क्या तरीक़ा इख्तियार करते, इसी चीज़ का नाम इज्तिहाद (जहां क़ुरआन और हदीस का आदेश स्पष्ट न हो वहां अपनी समझ से उचित रास्ता निकालना) है।

इस तर्तीब में क़ुरआन सबसे श्रेष्ठ, फिर सुन्नते रसूल सल्ल० और फिर उसवये सहाबा रज़ि० और फिर अहले इल्म का इज्तिहाद। लेकिन बदक़िस्मती देखिये कि आज कल और न सिर्फ़ आज कल बल्कि पिछली कई सदियों से मुसलमानों के अनपढ़ों ने नहीं बल्कि आलिमों ने इस तर्तीब को उलट दिया है। वह इल्म की चाह में अपनी सारी तवज्जो उन आलिमों की किताबों पर देते हैं जिन्होंने इस्लाम की प्रारम्भिक सदियों में अपनी वाकफियत और समझ-बूझ और अपने ज़माने के हालात के मुताबिक़ इज्तिहाद करके इस्लाम के अक़ीदों और क़ानून की व्याख्या की है। इसके बाद थोड़ी बहुत कोशिश सुन्नते रसूल और उसवये सहाबा का इल्म हासिल करने में भी इस्तेमाल की जाती है। लेकिन सबसे कम तवज्जो और फिक्र जिस चीज़ के हिस्से में आती है वह क़ुरआन है। आप मज़हबी तालीम के किसी पाठ्यक्रम को उठाकर देख लीजिये। आपको उसमें सबसे ज़्यादा फ़िक़ह, उसूल, अक़ीदे और फ़िलासफी की किताबें मिलेंगी। उसके बाद हदीस व आसार का नम्बर

आयेगा। मगर आप महसूस करे कि हर निसाब पाठ्यक्रम में यह विषय सिर्फ इस मक़सद के लिये रखा गया है कि उससे उस खास फ़िक़ही व क़ानूनी मत की ताईद हासिल की जाये, जिसकी पैरवी करने वालों ने वह निसाब बनाया है। रहा हदीस और सुन्नते रसूल का गहरा इल्म और उससे इज्तिहाद की क़ाबिलियत पैदा होना, तो यह न किसी का मक़सूद है और न किसी पाठ्यक्रम से यह फ़ायदा हासिल हो सकता है। आख़िर में. कुरआन का नम्बर आयेगा और यहां आप देखेंगे कि ख़ुद. कुरआन तो किसी पाठ्यक्रम में दाखिल ही नही है। अलबत्ता उसकी कुछ तफ़सीरें दाखिल हैं मगर वह ऐसी तफ़सीरें (टीकायें) है जिनसे क़ुरआन की रूह और उसके मग्ज़ (गिरी) तक पहुँचना मुश्किल है और इस पर सितम यह कि ज़्यादातर पाठ्यक्रमों में यह तफ़सीरें भी पूरी शामिल नहीं हैं।

इस ग़लत तालीम का नतीजा अन्धी पैरवी और गिरोह बन्दी के रूप में ज़ाहिर हुआ है। हमारी अनपढ़ अवाम तो दरकिनार हमारे उलमा का भी ज़्यादातर हिस्सा इस्लाम की असली रूह और उसकी सही तालीम से बेपरवा हो गया है। वह सीधे तौर पर खुदा की भेजी हुयी शम-ए-हिदायत (मार्ग दीप) से रोशनी हासिल नहीं करते, बल्कि उस दीप से जिससे मुख्तलिफ़ दीप रोशन हुये हैं उनके चारों ओर आशिकों की तरह इकट्ठा हो गये हैं। और हर गिरोह अपने पसन्दीदा दीप को ही असली मार्गदीप समझने लगा है।......अरबी

लोगों ने फ़ुरूअ (शाख) को उसूल की जगह दे दी है और उसूल को फ़ुरूअ का दरजा देने लगे हैं। एक सिराते मुस्तक़ीम (सीधा मार्ग) से हटकर विभिन्न पगडंडियों पर चल पड़े हैं। और हर गिरोह सिर्फ अपनी पगडंडी को ही असली सिराते मुस्तकीम समझने लगा है। सीधे तौर पर अल्लाह की किताब और रसूल की सुन्नत से फ़ायदा न उठाने और पूरी तरह फ़कीहों और मुज्तहिदों की रहनुमाई पर एतेमाद करने का क़ुदरती नतीजा यह है कि सदियों से हम में मुज्तहिद (मसलों का सही हल निकालने वाले विद्वान) पैदा होने बन्द हो गये हैं। ऐसे लोगों की कमी नहीं जो इल्म की तलब में उम्रें गुज़ार देते हैं। मगर हज़ारों लाखों में एक साहिबे इल्म भी ऐसा नहीं निकलता जो उसूले इस्लाम को ठीक-ठीक समझ कर नये हालात और नई ज़रूरतों पर उनको मुन्तबिक (Apply) कर सके और नये ज़माने के चन्द एक मसलों में नये क़ानूनों का इस्तेम्बात (शरई मसला निकालना) कर सके। हर मसला जब सामने आता है तो नज़रें पिछले उलमा की तरफ उठती हैं और कोई अल्लाह का बन्दा ख़ुद अल्लाह की किताब और उसके क़ौल व अमल पर निगाह डाल कर यह देखने की कोशिश नहीं करता कि अगर वहां फ़ुरूअ (मूल वस्तु से निकली हुई वस्तुयें) में कोई चीज़ ऐसी है जो इस मसले में हमारी रहनुमाई कर सकती हो तो उसूल में कौन सी अस्ल है जिससे उस मसले में एक नई शाख निकाली जा सकती हो। ऐसा मालूम होता है मशक्कतों के बाद भी

न हमारी आंखों में इतनी कूव्वत पैदा होती है कि खुद रास्ता के निशानात देख सकें न हमारे पांव में इतनी ताक़त आती है कि अपने बल बूते पर तो आप खड़े हों और मजबूती और जमाव के साथ चल सकें। इसलिए इस पर हमेशा मजबूर होते हैं कि कोई ताक़तवर बन्दा-ए-खुदा मिल जाये तो हमें गोद में उठाकर ले चले।

इससे मेरा मक़सद यह नहीं है कि पिछले मुजतहिदों या उनमें से किसी एक की तकलीद या पैरवी करने को नाजाइज़ ठहराऊँ या उन्होंने अपने इल्म और अपनी ज़ेहनी क़ाबलियतों से इस्लाम की जो सेवायें की हैं उनको बेकार क़रार दूँ। शायद ही मेरे दिल में इसका ख्याल भी आया हो। मेरा एतेराज़ दरअस्ल उस तर्तीब पर है जो तकद्दुम (पहला) और ताख़्खुर (बाद का) के मामले में इख्तियार कर ली गयी है। मेरे नज़दीक दीनी तालीम में सबसे पहला और मुख्य स्थान क़ुरआन का होना चाहिये और कोशिश करनी चाहिये कि जहां तक मुम्किन हो सके उसके मायने और उसकी शिक्षाओं को ज़्यादा से ज़्यादा समझा जाये। उसके बाद सुन्नते रसूल और उसवये सहाबा का मामला होना चाहिये। और इसके अध्ययन में पाठकों की यह कोशिश होनी चाहिये कि वह अपने आप को ज़ेहनी तौर पर अव्वल दौर के मक्का और मदीना की गलियों में पहुंचा दे और क़रीब से क़रीब मुक़ाम पर पहुँच कर रसूलुल्लाह सल्ल० और आप के सहाबा रज़ि० के आसार को देखे, और उस दानाई के साथ देखें कि उन आसार में जो उसूल हैं वह

अलग-अलग ज़ेहन में बैठते चले जायें। जो फ़ुरूअ (शाखें) हैं वह अपनी अपनी अस्ल के मातहत उस मुक़ाम पर दर्ज हों जो मुकाम खुद रसूले अकरम और सहाबा-ए-कराम ने उनको दिया था, और उन सबके साथ तालीमे इस्लाम का सम्बन्ध जिस नोइयत का था वह मज्मुई तौर पर सामने आ जाये। इस गहराई के साथ क़ुरआन और उसकी हक़ीक़ी तफ़सीर का अध्ययन करने के बाद एक तालिबे इल्म को देखना चाहिए कि तमद्दुन और तहज़ीब (सभ्यता एवं संस्कृति) की तरक्की के साथ-साथ जब मामलात ने व्यापकता इख्तियार की, नई-नई ज़रूरतें पेश आयीं और अक़्ली उलूम की इशाअत (प्रचार-प्रसार) से दीन से सम्बन्धित नये-नये मसले पैदा होने लगे तो पिछले ज़माने के उलमा ने किस तरह उसूल से फ़ुरूअ (शाखें) निकाले, कुल्लियात (व्यापक नियमों) से जुज़ियात (छोटे-छोटे मसले) निकाले, मामलात के लिये फ़िक़ही क़ानून तर्तीब दिये और अक़ीदे की तशरीह व तौज़ीह (व्याख्या) की। इस तर्तीब के साथ जब इल्म हासिल किया जायेगा तो अन्धी तकलीद और पैरवी अपनी बुराइयों समेत ख़त्म हो जायेगी। जिस हदतक पिछले मुजतहिदीन के इज्तेहादात हमारे लिये काफी हैं उस हद तक हम उनकी पैरवी करेंगे और जिन मामलात में वह काफी नहीं हैं उनमें हम खुद इजतिहाद करके किताबुल्लाह और सुन्नते रसूलुल्लाह से मसलों का हल पेश कर सकेंगे। और इससे गिरोह बन्दियां भी अपनी इस शिद्दत के साथ बाक़ी न रहेंगी, जो उन्होंने

बाद के ज़माने में इख़्तियार कर ली हैं, क्यों कि जो लोग इस तरीक़े से इल्म दीन का अध्ययन करेंगे उनको अच्छी तरह मालूम हो जोयगा कि दीन के उसूल (मूल) क्या हैं और फ़ुरूअ (शाखायें) क्या हैं ? उसूल में इख़्तेलाफ़ क्या मायने रखता है और फ़ुरूअ में इख़्तेलाफ की क्या हैसीयत है? कुफ्र क्या है, और इस्लाम की सीमायें कहां तक फैली हुयी हैं? कुफ्र व इस्लाम का फ़र्क़ किन उसूल पर आधारित है? एक व्यक्ति इस्लाम के मर्कज़ से दूर हो जाने के बावजूद किस सीमा तक इस्लाम के दायरे में रहता है और कहां पहुॅच कर उस दायरे से बाहर हो जाता है ? और जो शख्स इस्लामी दायरे के अन्दर हो मगर हमारी राय में मर्कज़ से दूर हट गया हो उसके साथ हमारा क्या बर्ताव होना चाहिये।

मगर खराबी तो यह है कि तालीम में क़ुरआन पर हदीस और हदीस पर फ़िकह, अक़ाइद और कलाम (तर्कशास्त्र) को प्राथमिकता दी जाती है। वह मात्र भूल-चूक का नतीजा नहीं है, बल्कि, एक बड़ी सोची समझी हुई ग़लत फ़हमी का नतीजा है। लोगों ने देखा कि इस्लाम में जितने फ़िरक़े पैदा हुये हैं वह सब पहले तो क़ुरआन से और दूसरे हदीस व आसार से दलील लाते हैं, और क़ुरआन मजीद की आयतें और हदीस के आसार को अपने मतलब के मायने पहनाकर उन पर अपने मसलक की बुनियाद रखते हैं। इस बुनियाद पर जबकि खुलकर यह नहीं कहा जाता मगर अमली तौर पर यह समझ लिया गया है। और दबी ज़बान से कह भी दिया जाता है कि इख़्तिलाफ का सबसे बड़ा स्रोत

क़ुरआन है, और उसके बाद हदीसें व आसार हैं। यह ख्याल करके उलमा के एक बड़े गिरोह ने अपने नज़दीक सुकून व चैन इसमें देखा कि वही तालीम को सिर्फ उन किताबों तक सीमित रखा जाये जो खास अपने मसलक के मुताबिक़ फिक़ह, अक़ीदे और कलाम (तर्कशास्त्र) के बहसों पर लिखी गयी हों। हदीस व आसार को इस हद तक पढ़ाया जाये जिस हद तक वह अपने मसलक के लिये प्रमाण और सनद का काम दे सकें और क़ुरआन मजीद को सिर्फ़ बर्कत के तौर पर पढ़ लिया जाये।

यहां इस तफ़सील का मौक़ा नहीं कि यह ग़लतफहमी किन कारणों से पैदा हुई और किस तरह उसने ज़ोर पकड़ा। उसकी तफ़सील एक मुस्तक़िल किताब चाहती है। क्यों कि मानो इस्लाम में फ़िरकों की पैदाइश की तारीख है। मैं सिर्फ वाक़िया की हद तक उसको स्वीकार करूंगा। निस्सन्देह फ़िरक़ाबन्दी की बुनियाद क़ुरआन और सुन्नते रसूल पर रखी गयी है, लेकिन मुझे उससे मानने से इनकार है कि उसकी ज़िम्मेदारी क़ुरआन का सुन्नते रसूल पर है। क़ुरआन और उसके लाने वाले ने तो एक ही दीन और एक ही सीधा और सच्चा मार्ग पेश किया है, और उसकी तो अस्ल दावत यह है कि उस सीधे और सच्चे मार्ग में फ़िरकाबन्दी न करो। वह तो कहता है कि ''अल्लाह की रस्सी को मज़बूत पकड़ लो और गिरोह-गिरोह न बन जाओ'' और ''दीन को क़ायम करो और उसमें अलग-अलग न हो जाओ'' ''यह मेरा सीधा

मार्ग है इस पर चलो'' और ''अलग-अलग रास्तों पर न चलो कि वह तुम्हें अस्त-व्यस्त करके अल्लाह के सीधे मार्ग से हटा देंगे।'' ''अल्लाह और उसके रसूल की इताअत करो और आपस में झगड़े न पैदा करो कि इस तरह तुम्हारी हिम्मतें टूट जायेगी और तुम्हारी हवा उखड़ जायेगी।'' ''और उन लोगों की तरह न बन जाओ जिन्होंने खुली आयतों के आने के बाद फ़िरकेबन्दी में पड़ गये और इख्तिलाफ़ पैदा किया कि ऐसे लोगों के लिये बड़ा अज़ाब है, ''जिन लोगों ने अपने दीन में फूट डाली और गिरोह गिरोह बन गये उनसे ऐ मुहम्मद (सल्ल०) तुम्हारा कोई वास्ता नही है। फिर वह एहसान जताता है कि अल्लाह ने तुम को सीधी राह दिखा कर आपस की फ़िरकाबन्दी और आपसी दुश्मनी से बचा लिया और तुम सब को भाई-भाई बना दिया।'' ''लोगो अपने ऊपर अल्लाह की उस नेमत को याद करो तुम आपस में एक दूसरे के दुश्मन थे, उसने तुम्हारे दिलों में मुहब्बत डाल दी और उस नेमत से तुम भाई भाई बन गये। तुम आग से भरे गढ्ढे के किनारे पर थे उसने तुमको उससे बचा लिया।''

इससे मालूम होता है कि दीन में फ़िरकाबन्दी की ज़िम्मेदारी कुरआन और रसूल पर नहीं थी, और हर शख्स जो क़ुरआन और उसके लाने वाले को सच्चा मानता है उसे स्वीकार करना चाहिये कि यह दोनों (जो हक़ीक़त में एक ही हैं) इस ज़िम्मेदारी से मुक्त हैं। मगर जब यह वाक़िया है कि इख्तिलाफ़ की नहरें, किताब व सुन्नत ही के स्रोत से फूटी हैं

तो ग़ौर करना चाहिये कि आया यह वाक़िया क़ुरआन के दावे को झुठलाता है या दरहक़ीक़त इस वाक़िया से क़ुरआन के दावे पर कोई असर नहीं पड़ता? क़ुरआन व सुन्नत से पैदा होने वाला इख़्तिलाफ़ हक़ीक़त के एतेबार से उस इख़्तिलाफ़ से बिल्कुल अलग है जिसकी बदौलत दीन में फ़िरक़ाबन्दी पैदा होती है।

इख़्तिलाफ़ और मतभेद के जितने रूप दुनिया में नज़र आते हैं उन सब पर निगाह डालिये तो आप को मालूम होगा कि उनको दो बड़ी क़िस्मों में बांटा जा सकता है। एक क़िस्म का इख़्तिलाफ़ तो यह है कि दो या बहुत सी चीज़े अस्ल और बुनियाद में एक हों मगर कुछ ज़ाहिरी मामलों में उनके दरम्यान इख़्तिलाफ़ हों। और दूसरी क़िस्म का इख़्तिलाफ़ यह है कि उनके दरम्यान असली और बुनियादी इख़्तिलाफ़ हों। मिसाल के तौर पर एक इख़्तिलाफ़ पानी और बर्फ़ का इख़्तिलाफ़ है, दूसरा इख़्तिलाफ़ पत्थर और पानी का है। एक इख़्तिलाफ़ यह है कि कि एक ही जिस्म का एक छोर पूरब की ओर है और दूसरा पश्चिम की ओर। और एक इख़्तिलाफ़ यह है कि दो अलग-अलग जिस्म हैं जिनमें से एक का मुंह पूरब की ओर है और दूसरे का मुंह पश्चिम की ओर। एक इख़्तिलाफ़ यह है कि दो आदमी एक ही सड़क पर एक दिशा में चल रहे हैं मगर एक दायें किनारे पर है दूसरा बायें किनारे पर, एक सवार है और दूसरा धीरे, एक तेज़ चल रहा है दसूरा सुस्त। और एक इख़्तिलाफ़ यह है कि दो

आदमी दो अलग रास्तों पर चल रहे हैं। और एक पूरब से पश्चिम को जा रहा है दूसरा पश्चिम से पूरब को। एक इख़्तिलाफ़ यह है कि एक ही क़ौम के विभिन्न गिरोह सामाजिक रस्म व रिवाज, रहन-सहन के तरीकों और आर्थिक दशाओं, के इख़्तिलाफ़ की वजह से विभिन्न वर्गों में बटे हों मगर क़ौम की हैसीयत से एक हों। और एक इख़्तिलाफ़ यह है कि दो मुख़्तलिफ़ कौमें अपने मुल्की सीमाओं, सभ्यता एवं संस्कृति, सियासत और हुकूमत के एतिबार से भिन्न हों और उनके दरम्यान कोई ऐसा रिश्ता और ताल्लुक न हो जो उन्हें एक दूसरे से मिले रहने पर मजबूर करे।

इख़्तिलाफ़ की यही दोनों क़िस्में मज़हबी मामलों में भी पाई जाती हैं। एक क़िस्म का इख़्तिलाफ़ तो यह है कि दो आदमी या दो गिरोह एक ही दीन के मानने वाले हैं। उस के असली और बुनियादी मामलों में सहमत हैं, मगर अक़ीदे और इबादात व मामलात में आंशिक रूप में उनके दरम्यान मतभेद है, और यह मतभेद उनको दीन के आम मामलों में सहमत होने से नहीं रोकता। दोनों में से हर एक नेक नीयती के साथ यह समझता है कि दीन के फ़लां हुक्म की जो व्याख्या उसने की है वही सही है, मगर उसके साथ यह भी समझता है कि मुख़ालिफ़ गिरोह ने जो व्याख्या की है उसको दीन के दायरे से खारिज नहीं कर देती है और हमारा आपस का इख़्तिलाफ़ सिर्फ इस मसले की व्याख्या की हद तक है। दूसरे किस्म का इख्तेलाफ़ यह है कि दो गिरोहो के

बीच जिसे मज़हबी मसले में इख्तिलाफ हो उसको वह दीन का बुनियादी सवाल बना ले, दोनों एक दूसरे को गुमराह और बेदीन समझें और उनके दरम्यान कोई ऐसा मामला बाकी ही न रहे जिसमें वह एह रह सकें।

पहली क़िस्म का इख्तिलाफ़ेराय एक स्वाभाविक और फ़ितरी इख्तिलाफ़ है। दुनिया के सारे ख्याली और अमली मसलों में से कोई एक भी ऐसा नहीं बताया जा सकता जिस में इन्सानी फ़ितरत ने इस तरह के इख्तिलाफ़े राय और इख्तिलाफ़े अमल की शक्ल में ज़ाहिर न किया हो। हर मामले में हम यही देखते हैं कि लोगों के अक़ीदे मुख्तलिफ़ हैं, विचार भिन्न हैं, तरीक़े भिन्न हैं और उन सबकी वजह यह है कि उनकी तबियतें मुख्तलिफ़ हैं, न सब लोग एक तरह से सोचते हैं, न एक तरह से समझते हैं, न एक ही नज़र से देखते, न एक तरह से असर और अमल करते हैं। और न ही एक तरह से प्रभावित और असर क़ुबूल करते हैं। एक ही घटना का एक शख्स पर कुछ असर पड़ता है और दूसरे पर कुछ। एक ही चीज़ को एक शख्स किसी नज़र से देखता है और दूसरा किसी और नज़र से। एक ही बात के मायने एक व्यक्ति कुछ समझता है और दूसरा कुछ और। एक ही मक़सद के लिये एक शख्स एक तरीक़ा इख़्तियार करता है और दूसरा किसी और तरीक़े से काम लेता है। एक ही कार्य से एक शख्स का कुछ मक़सद होता है और दूसरे का कुछ और। मतलब यह कि आदम की सन्तान में अक़्ल व समझ, तबियतों

और अन्दाज़े फ़िक्र के लिहाज़ से जितना फ़र्क़ है उतना ही उनके विचारो और उन तरीक़ों में भी फ़र्क़ है।

इस स्वाभाविक मतभेद और फ़र्क़ की वजह से क़ुरआन और सुन्नत के समझने और उसके अनुसार अमल करने में भी मतभेद हो सकता है और हुआ है। जबकि क़ुरआन की आयतें साफ़ और स्पष्ट हैं और रसूले अकरम सल्ल० ने उनके कथनों से उनके मायने और मतलब की और अधिक व्याख्या कर दी है और अपने आमाल से उनका एक स्पष्ट नमूना पेश कर दिया है। मगर इसके बावजूद इन्सानी फ़ितरत का तक़ाज़ा यही है कि हर आयत और हदीस के मायने सब लोग एक ही न समझें और हर अमल और नमूने को सब लोग एक ही तरह न देखें। इस समझ और विचारों के इख़्तिलाफ़ का अगर विवेचना किया जाये तो उसकी भी मुख़्तलिफ़ सूरतें पाई जायेंगी। मिसाल के तौर पर कुछ लोग पहले से कोई ख़ास राय क़ायम किये बग़ैर एक आयत और एक हदीस के मायने व मतलब और मक़सद व आशय को समझने की कोशिश करते हैं। और कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके ज़ेहन में पहले से कुछ ख्यालात जमे हुये होते हैं फिर वह उन्हीं ख्यालात के मुताबिक़ क़ुरआन व हदीस की व्याख्या कर लेते हैं।

कुछ लोग सही फ़ितरत और सही फ़िक्र वाले होते हैं। वह हर चीज़ का सीधा और स्पष्ट भाव लेते हैं। सिर्फ़ काम की बात ले लेते हैं। उन बातों में उलझते नहीं, जिनमें पड़ने से कोई फ़ायदा न हो। उसके विपरीत कुछ लोग ऐसे

होते हैं जिनके दिमाग में उलझाव होता है किसी चीज़ को सीधे और साफ़ तरीक़े से सोंच और समझ ही नहीं सकते। हर चीज़ को तिरछी और टेढ़ी निगाह से देखते हैं और काम की बातों को छोड़ कर बेकार बातों में उलझ जाते हैं।

कुछ लोगों की नज़र गहरी, समझ तेज, अक्ल पुख्ता, फ़िक्र मज़बूत होती है। वह बात की तह को पहुँच जाते है। कुछ लोगों की निगाहें सतही होती हैं। अक़्ल में रसाई और समझ में तेज़ी नहीं होती। इसलिए वह सिर्फ ज़ाहिर को देख सकते हैं और अन्दरून तक नहीं पहुँच सकते। इसी तरह लोगों के कुल इल्म में इख्तिलाफ़ होता है कुछ लोगों के पास मालूमात के साधन व्यापक होते हैं और कुछ लोगों का इल्म सीमित होता है।

कुछ लोगों के मिज़ाज में संतुलन होता है वह शिद्दत और कमी व ज़्यादती से बचे रहते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग स्वाभाविक रूप से इन्तेहा पसन्द होते हैं। इसलिए वह मर्कज़ से हट कर किसी एक ओर झुक पड़ते हैं और अन्तिम सीमा को पहुँच जाते हैं।

इन मुख़्तलिफ़ सूरतों में से कोई भी ऐसी नही है जो दीन में रुकावट पैदा करने वाली हो। अगर बदनीयती शामिल न हो तो चाहे कितनी ही मुख्तलिफ़ तरीकों से कुरआन और सुन्नत की व्याख्या की जाये, उस पर ग़लती का हुक्म लगाया जा सकता है मगर बेदीनी का हुक्म नहीं लगाया जा सकता है। और बदनीयती का मामला ऐसा है कि उसमें यक़ीन के साथ हुक्म लगाना आदमी के लिए

मुश्किल है। क्योंकि नीयतों का हाल खुदा के सिवा कोई नहीं जानता । हम सिर्फ ज़ाहिरी अलामतों और निशानियों को देखकर किसी के सम्बंध से यह राय क़ायम कर सकते हैं कि उसने बदनीयती के सबब ऐसा किया है लेकिन उसमें किसी न किसी हद तक यह इम्कान बाकी रहता है कि शायद उसने कमअक़्ली, ना समझी या इन्तेहा पसन्दी की बिना पर ऐसा किया हो। इसके अलावा यह भी ज़रूरी नहीं है कि एक वाक़ई बदनीयत शख्स ने किताब व सुन्नत की ग़लत व्याख्या कर के जो मसलक निकाल लिया हो उसके मानने वाले भी वाक़ई बदनीयत हों। हो सकता है कि उन्होंने नादानी मगर नेक नीयती के साथ उसकी पैरवी इख्तियार की हो। लिहाज़ा अक़ीदे में भी अमली तरीक़ों के इख्तिलाफ़ में नीयत के सवाल से हटकर के सिर्फ़ यह देखना चाहिये कि इख्तिलाफ़ अस्ल और बुनियाद में है या फुरूअ और जुज़ियात (आंशिक मामलों) और ग़ैर बुनियादी बातों में। इस दृष्टि से अगर देखा जायेगा तो मालूम होगा कि क़ुरआन और सुन्नत ने अस्ल और बुनियाद यानी ''अद्दीन'' और ''सिराते मुस्तक़ीम'' में किसी इख़्तिलाफ़ की गुन्जाइश बाक़ी नहीं रखी है, हां फुरूअ और जुज़्यात यानी मसलक और तरीक़ों में इख्तिलाफ़ की गुंजाइश छोड़ दी है ताकि हर शख्स दीन के दायरे में रहते हुये अपनी क़ाबिलियत और सलाहियत और तबीयत के रूझान के लिहाज़ से जिस मायने और मतलब को समझ सकता हो समझे और जिस तरीक़े से मुत्मइन हो सकता हो, अपना इत्मीनान कर ले। अगर्चे इसमें भी जो

फ़ुरूअ और जुज़्यात (ग़ैर बुनियादी मामलें) अहमीयत रखते थे उनमें से ज़्यादा से ज़्यादा मुम्किन व्याख्या व तशरीह से काम लिया है, मिसाल के तौर पर तौहीद एक बुनियादी अक़ीदा है उसमें गुन्जाइश हरगिज़ नहीं छोड़ी गयी है कि कोई शख़्स ख़ुदा को एक समझे, कोई दो, कोई तीन, और फिर भी सब मुसलमान रहें। ख़ुदा के एक होने पर सबको ईमान लाना पड़ेगा। हां इस वहदत (एकत्व) का जो अर्थ एवं भाव एक पढ़ा-लिखा मुसलमान समझता है वह स्पष्ट है कि एक देहाती नहीं समझ सकता। एक दार्शनिक के ज़ेहन में वहदत के जो मायने होगें वह एक सामान्य व्यक्ति के ज़ेहन में नहीं समा सकते। मगर उसके मुख़्तलिफ़ मायने समझने के बावजूद वह जब तक ख़ुदा को एक समझते हैं उस वक़्त तक एक ही अस्ल तौहीद पर सहमत रहेगें। इसी तरह फरिश्तों, आस्मानी किताबों, आख़िरत, नबियों और रसूलों के मामले में जो अस्ल और बुनियादी अक़ीदे क़ुरआन व सुन्नत ने पेश किया है उसमें इख़्तिलाफ़ की गुन्जाइश नहीं है। यह मुम्किन नहीं है कि कोई शख़्स फ़रिश्तों के वजूद से इनकार कर दे या आसमानी किताबों के कलामे इलाही होने का इनकारी हो या आख़िरत को न माने या रिसालत का इक़रार न करे या क़ुरआन में जिन रसूलों का नाम स्पष्ट रूप से लिया गया है उनमें से किसी की रिसालत से इन्कार करे और फिर भी मुसलमान भी रहे। लेकिन फरिश्ते, वही, रिसालत और क़ियामत वग़ैरा की हक़ीक़त और उनके मायने समझने में

इख़्तिलाफ़ होना मुम्किन है। और जब तक कोई शख़्स अस्ल अक़ीदे से इन्कार न करे उस वक्त तक वह किसी तावील की बिना पर दीन से खारिज नहीं हो सकता । यही हाल आमाल (कर्म) का है। ख़ुदा और रसूल ने जिन आमाल को फ़र्ज़ क़रार दिया है या जिनकी ताकीद फ़रमाई है या जिनको हराम करार दिया है और जिनसे साफ लफ़्ज़ों में मना किया है, उनके नफ्से फर्ज़ या नफ्से हराम, या नफ्से मोकिद का, या नफ्से ममनूअ होने में इख़्तिलाफ़ की गुन्जाइश नही है। कोई शख़्स फ़र्ज़ को यह नहीं कह सकता कि वह फर्ज़ नहीं है। अलबत्ता आमाल के तरीकों और उनकी सूरतें में इख़्तिलाफ़ हो सकता है और उस इख़्तिलाफ़ से अस्ल दीन में कोई रुकावट नहीं पड़ती। हां क़ुरआन और सुन्नते रसूलुल्लाह से जो इख़्तिलाफ़ पैदा हो वह अस्ल दीन का इख़्तिलाफ़ नहीं है, जिससे दीन में फ़िरकाबन्दी पैदा होती है। बल्कि वह तरीकों और मसलकों में राय और तरीक़ों का स्वाभाविक और फितरी इख़्तिलाफ़ है जिसके ज़ाहिर होने से हबलिल्लाह (अल्लाह की रस्सी) के टुकड़े-टुकड़े नहीं होते। सिराते मुस्तक़ीम मुख़्तलिफ़ पगडन्डियों में बट नही जाती, हिदायत गुमराही में नहीं बदल जाती । एक उम्मत की कई उम्मतें नहीं बन जातीं। जमाअत का संगठन बिखर नहीं जाता और विवाद पैदा नहीं होता जिससे हिम्मते टूट जायें और हवा उखड़ जाये। यह दूसरी क़िस्म का इख़्तिलाफ़ और फ़िरक़ाबन्दी क़ुरआन और सुन्नत से पैदा नहीं हुआ है

बल्कि खुद हमारे अपने नफ्स की शरारतों से पैदा हुआ है। उस की ज़िम्मेदारी क़ुरआन व सुन्नत पर नही बल्कि क़ुरआन व सुन्नत से ग़ाफिल होने और जाहिल रहने पर है और यह फिरक़ाबन्दी और इख्तिलाफ़ है जिसे पैदा करने के लिये नहीं बल्कि मिटाने के लिये .कुरआन उतारा गया है और रसूल को भेजा गया है।

मेरे कहने का मक़सद यह है कि दीन में अस्ल फ़ितना, इख्तिलाफ़ का फितना नहीं है, गिरोहबन्दी, फिरक़ाबन्दी और तास्सुब का फ़ितना है। हर गिरोह का सिर्फ अपने मसलक, अपने तौर तरीके को अस्ल दीन और एक ही सिराते मुस्तक़ीम क़रार देना और दूसरे को दीन से खारिज और गुमराह समझना, इस्लामी अबबीयत और तरफदारी को छोड़कर जमाअती असबीयत इख्तियार करना, आपस में दुश्मनी और एक दूसरे से बिगाड़ रखना, यही असली फ़ितना है, इसको क़ुरआन ने फ़िरका बन्दी का नाम दिया है। यही वह चीज़ है जिससे बचने की क़ुरआन में बार-बार ताकीद की गयी है और इसी के ताल्लुक़ से फ़रमाया ''जो लोग अपने दीन के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और गिरोह दर गिरोह बन जाते हैं, ऐ मुहम्मद तुम्हें उनसे कोई वास्ता नहीं है।'' उस दीन की वुसअत (व्यापकता) ज़ाहिर करने के लिए अल्लाह ने उसे रस्सी से ताबीर किया है और हुक्म दिया है कि तुम इस रस्सी को थामे रहो। इसका मतलब यह है कि चाहे तुमने उस रस्सी

को किसी किनारे से पकड़ा हो या बीच में से, पूरब की तरफ से, या पश्चिम की तरफ से, सीधे हाथ से, या उल्टे हाथ से बैठे-बैठे या खड़े-खड़े, बहरहाल जब तक इस रस्सी को तुम थामे रहोगे, फ़िरक़ाबन्दी और टकराव से महफ़ूज़ रहोगे, और जब तुम में का हर गिरोह अपनी गिरफ्त की हद खत्म होते ही उसको काट डालेगा और उसी रस्सी के मुख्तलिफ़ टुकड़े मुख्तलिफ़ गिरोहों में बट जायेंगे तो फिर तुम ही नहीं बल्कि तुम्हारा दीन भी अस्त व्यस्त हो जायेगा। दुनिया में तुम्हारी हवा उखड़ जायेगी और आख़िरत में तुम्हारा यह हाल होगा कि खुद तुम्हारे सरदार मुहम्मद सल्ल० को तुम से कोई वास्ता न होगा।

इसलिए मसलकों और तरीकों के इख्तिलाफ़ को दीन का इख्तिलाफ़ समझना बुनियादी ग़लती है। दीन तो एक ही है। जिसको क़ुरआन और साहिबे क़ुरआन ने पेश किया है। अलबत्ता उस दीन को समझने और बरतने के तरीके मुख्तलिफ़ हो सकते हैं और उन तरीकों का इख्तिलाफ़ फ़ितरी और स्वाभाविक है, जिससे घबराने की कोई वजह नहीं है। क़ुरआन खुद कहता है कि ''हमने हर गिरोह के लिये एक तरीक़ा निर्धारित कर दिया है और हर गिरोह उस पर चलता है'' और ''हमने तुम मे से हर एक के लिये एक तरीक़ा और एक रास्ता निर्धारित कर दिया है।'' इन तरीक़ों के इख्तिलाफ़ात से डर कर नफ़्से क़ुरआन को जो अस्ल दीन है छोड़ बैठना और उससे गफ़लत बरतना कोई अक्लमन्दी नहीं है। कुरआन के अध्ययन से जुज़ियात व

फ़ुरूअ (वह बातें जिनका ताल्लुक़ दीन की बुनियादी अकीदों और मामलों से न हो) में तावील व ताबीर के इख़्तिलाफ़ात ज़रूर पैदा होंगे मगर मौलिक नियमों और सिद्धान्तों जिन पर दीन की बुनियाद है लोगों के दिलों में जम जायेंगे। उसी तेज़ी से फ़िरकाबन्दी और गिरोह बन्दी के फ़ितने का ख़ात्मा हो जायेगा।